आचार्य धर्मानंद कोसंबी की आत्मकथा 'निवेदन' में वर्णित आधुनिक बौद्ध चिंतक

संदीप सपकाले,

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

सन् 1924 में 'निवेदन' शीर्षक से आचार्य धर्मानंद कोसंबी की आत्मकथा ने मराठी में बौद्ध यात्रा साहित्य के एक युग को चित्रित किया है। उनकी यात्राओं के संस्मरणों का यह पूर्वार्ध उनके प्रारंभिक घुमक्कड़ जीवन में अत्यंत विस्तार से लिखा गया है। इस पुस्तक के प्रकरणों को उन्होनें सर्वप्रथम गोवा के एक साप्ताहिक वर्तमान पत्र 'भारत' को यात्रा वृतांत या प्रवास वर्णन के रूप में प्रकाशनार्थ भेजें गए थे। किंतु मराठी में वर्णित यह प्रवास वर्णन साप्ताहिक भारत के संपादक को 'आत्मवृत्त' प्रतीत हुए। अपनी आत्मकथा की प्रस्तावना में साप्ताहिक भारत के विषय में बताते हुए धर्मानंद कोसंबी लिखते है कि "गोमांतक में दीर्घकाल तक प्रकाशित होनेवाले इस साप्ताहिक का प्रकाशन पणजी में 1913 से 1917 तक और केपें में 1920 से 1949 तक मराठी तथा पुर्तगाली भाषा में इसके संस्थापक गोविंद पुण्डलिक हेगडे देसाई, दत्तात्रय जगन्नाथ बोरकर और शांबाराव कृष्णाजी सरदेसाई ने किया था।

सन् 1920 में इस पत्र की पूरी जिम्मेवारी हेगडे देसाई ने स्वीकार की थी। 1917 के बाद के दो तीन वर्ष की अवधि को यदि छोड़ दिया जाए तो हेगडे देसाई ने अपने निधन के वर्ष सन् 1949 तक इस पत्र का संपादन किया था। इस पत्र के संपादन में उन्हें लगभग तीस से ज्यादा पुर्तगाली सरकार की कोर्ट कार्यवाही उनपर हुई थी"।[1] श्रीयुत शांबाराव कृष्णाजी सरदेसाई जो भारत साप्ताहिक के मराठी संभाग के संपादक थे उन्होंने इसके पहले अंक के शीर्षक का नामकरण 'आत्मवृत्त' किया और अगले ही अंक में बदलकर 'आत्मनिवेदन' कर दिया। मराठी संभाग के संपादक के इस नामकरण का विरोध धर्मानंद कोसंबी ने नहीं किया किंतु उनके गोमांतक मित्रों ने आत्म शब्द को इससे अलगाकर निवेदन ही कहने लगे थे तथापि धर्मानंद कोसंबी का यह प्रवास वर्णन उनके संस्मरणों की आत्मकथा के रूप में मराठी साहित्य की प्रमुख कृति मानी जाती है। प्रस्तुत शोध पत्र में 'निवेदन' आत्मकथा के प्रकरण– 13 में 'मद्रास आणि ब्रह्मदेश' के 'मद्रास (चेन्नई) मधील अनुभव' के अंतर्गत प्रमुख आधुनिक भारतीय एवं सिंहली बौद्ध चिंतकों से धर्मानंद कोसंबी से संपर्क एवं संवाद कैसे स्थापित हुआ जिसे इस विस्तृत प्रकरण में समझा जा सकता है।

प्रकरण 13 'मद्रास और ब्रह्मदेश' – उत्तर भारत के भोजपुर निवासी (ठाकुर) महावीर नामक एक गृहस्थ को बड़ोदा अधिपति श्रीमंत महाराज मल्हारराव गायकवाड का आश्रय प्राप्त था। इस आश्रय का कारण था किमहावीर को कुश्ती जैसे मर्दाना खेल में महारथ हासिल थी। महावीर को मल्हारराव का वरद प्राप्त था किंतु बड़ोदा के रेसिडेंड कर्नल फ्रेअर को जहर देने के आरोप में सन 1875 में मल्हारराव को पदच्युत कर मद्रास भेज दिया गया था। यही पर मल्हारराव गायकवाड कि मृत्यु भी हुई। मल्हाराराव के बड़ोदा से निकाले के बाद महावीर को बड़ोदा छोड़ना पड़ा। बड़ोदा छोड़कर अपने एक साथी के साथ महावीर सीलोन में आया गया। अपने सात आठ वर्षों के सीलोन वास्तव्य में यहाँ के भिक्षुओं के साथ उसकी मैत्री हो गयी थी। आगे वह भिक्षु बनकर स्वदेश लौटा। स्वदेश

लौटकर उसे कलकत्ता में रहने के लिए एक कुटिया मिल गयी थी। कलकत्ता के शहरी इलाके में रहने वाले एक सिंहली गृहस्थ ने इस कुटिया में रहने वाले भिक्षुओं के लिए प्रतिमाह बीस रूपये दान देने की वसीयत बना रखी थी। इस सिंहली गृहस्थ की मृत्यू के बाद उनके मृत्यू पत्र भिक्षुओं के अधिकार में आया। सिंहली गृहस्थ के खाते में जमा रखी गयी राशि वैसे ही रही क्योंकि भिक्षुओं को धन से भला क्या लगाव? ऐसे में भिक्षु महावीर ने इस जमा धनराशि को बौद्धों के लिए कैसे उपयोग किया जाए इस पर योजना बनाई। बोधगया अथवा वाराणसी में बौद्ध यात्रियों के लिए एक धर्मशाला का निर्माण किया जाए यह विचार आया लेकिन इन दोनों स्थानों के आसपास उन्हें कोई जमीन नहीं मिली।

अंततः भगवान बुद्ध की परिनिर्वाण स्थली गोरखपुर जिले के करीब कसया तहसील के एक गाँव में उन्होंने खेत खरीद कर वहाँ पर धर्मशाला का निर्माण प्रारंभ किया। भिक्षु महावीर को मिले इन पैसों से धर्मशाला का काम पूरा नहीं होने वाला था। तब कलकत्ता के खेजारी नामक बर्मी व्यापारी गृहस्थ ने बारह तेरह हजार रूपए खर्च कर धर्मशाला का निर्माणा कार्य पूरा किया। तभी से भिक्षु महावीर वही रहते हैं। काशी में रहते हुए मैंने योगसूत्रों का अध्यचयन किया था। इसी प्रकार योगसूत्र की पुस्तकें बौद्ध वाङमय में हैं अथवा नहीं इसे जानने की मेरी बड़ी उत्कट इच्छा थी। विद्योदय विद्यालय के प्रियरत्न नामक भिक्षु ने मुझे 'विशुद्धिमार्ग' की एक प्रति उपलब्ध कराते हुए कहा कि इसमें योग शास्त्र का अच्छा विवेचन किया गया है। किंतु उस समय पालि भाषा से मेरा विशेष परिचय नहीं होने के कारण मुझे वह बिल्कुल भी समझ नहीं आया। फिर चार से पाँच महीने बाद मुझे बर्मी लिपि में छपी इसकी प्रति प्राप्त हुई यथा केवल बर्मी लिपि सीखने के उद्देश्य से मैंने यह ग्रंथ पढ़ा। लेकिन मेझे इस ग्रंथ की चटक लग गयी और मैंने इसके पहले कुछ भागों को दो बार पढ़ा और उसमें उल्लिखित ध्यानभावना आदि प्रकारों को स्वयं अभ्यास करने की इच्छा प्रबल हुई। किंतु उसमें वर्णित रहने योग्य स्थान सीलोन में मिल पाना कठिन था।

सिंहल द्वीप में अनेक रमणीय विहार हैं। सृष्टि वैभव की अनुपम शोभा लंका में देखने को मिलती है। परंतु ऐसे रमे विहारों में मैं रहने गया होता तो वहाँ हिंदी लोगों के अनुकूल अन्न नहीं मिलता और इस जगहपालिभाषा बोलने वाले भिक्षु दुर्लभ होने के कारण बोलचाल की समस्या भी होती। जिस भिक्षु महावीर के विषय में मैंने आपको बताया था उनका धर्मदास नामक एक पंजाबी शिष्य बौद्ध धर्म का अध्ययन करने सीलोन आया था। सिंहली लोगों के भोजन से वह पहले ही दिन से त्रस्त हो गया था। उसी ने मुझे भिक्षु महावीर और उनके द्वारा कुशीनारा में बनाई गयी धर्मशाला की बात कही थी। उसने मुझसे कहा कि कुशीनारा की धर्मशाला में मुझे सभी सुविधाओं के साथ ध्यानभावना के लिए उत्तम अवकाश मिलेगा। मैंने निश्चय किया की अब पहले कलकत्ता जाकर फिर वहाँ जाऊंगा, ऐसा मेरा विचार था। किंतु मेरा 'दैवदुर्विपाक' अब भी समाप्त नहीं हुआ जिस कारण एक अकल्पित स्थान पर मेरा कैसे जाना होगा मुझे इस प्रकरण में बताना है। श्रीसुमंगलाचार्य को जब मेरी योजना के बारे में पता चला तब उन्हें बहुत बुरा लगा। बेहद अनमने ढ़ग और नाखुशी से उन्होंने मुझे जाने की अनुमति दी। मैंने निश्चय किया था कि अपने पास धन नहीं रखना है। बिना किसी और चीजों के तीन चीवर और एक भिक्षा पात्र लेकर दिनांक 26 मार्च 1903 को मैं निकला।

धर्मपाल (अनागरिक) के पिता ने मुझे मद्रास जाने का सेकंड क्लास का टिकट निकाल कर दिया। दूसरे मित्रों ने बिस्कुट आदि खाने के पदार्थ दिए। मद्रास के एग्मोर स्टेशन उतरकर श्रीसिंगारावेलू के घर चलकर पहुँचा। थोड़ी अंग्रेजी अब समझने लगा था तब सिंगारावेलू की बात समझने में कोई समस्या नहीं आयी। उसने

मुझे भोजन कराया लेकिन कलकत्ता का टिकट देने से साफ मना कर दिया। उसने कहा "हमारी सभा दरिद्री में चल रही है मैं आपको मदद नहीं कर सकता"। सीलोन से पैसे मिल जाने तक उसने मुझे यहाँ ठहराने को तैयार हो गया लेकिन दूसरे या तीसरे दिन ही यह सब ढेर हो गया और मद्रास में एक नई संस्था स्थापित कर उसी में मुझे रखने की कल्पना उसने खोज निकाली। सीलोन के कई मित्रों को कलकत्ता के खर्च के लिए कई पत्र लिखें लेकिन दुख की बात ये कि उनकी ओर से उत्तर नहीं आया। उत्तर आया भी तो उसमें पैसों की कोई मदद नहीं हुई। अर्थात अब सिंगारावेलू जो कहेगा मुझे वही मानना होगा इसके सिवा अब कोई पर्याय भी नहीं था। उस समय उसके घर की बगल में एक कर्नाटकी ब्राह्मण का घर खाली था। यही पर उसने मेरे रहने की व्यवस्था की। भोजन सिंगारावेलू के यहाँ पर ही होता था लेकिन मद्रास के भोजन से मेरी हालत सीलोन से ज्यादा यहाँ खराब हो गयी। दिन ब दिन मेरे शरीर का त्राण कम हो रहा था। तथापि अब मैंने निरंतर अंग्रेजी का अध्ययन जारी रखा। दूसरा कोई सिखाने वाला नहीं था तब मैंने अपने शब्द कोश के सहारे ही यह प्रयास जारी रखा।

उस समय मद्रास में मद्रास महाबोधी सभी नाम से एक संस्था कार्यरत थी। इस संस्था के अध्यक्ष प्रो. पी. लक्ष्मी नरसू नायडू थे और सिंगारावेलू सचिव थे। वैशाख पूर्णिमा के दिन बुद्ध को बुद्धपद की प्राप्ति हुई थी। संस्था के द्वारा इस दिन को कई वर्षों से मनाया जा रहा था। प्रतिवर्ष इस उत्सव को मनाने का खर्च बर्मा के प्रसिद्ध व्यापारी श्री मोंगश्वर द्वारा किया जाता था। अधिकांश परिया जाति के अतिशुद्र लोगों ने मद्रास शहर में बौद्ध धर्म स्वीकारा था। उनके नेता पंडित आयोथीदास थे लेकिन महाबोधी के अधिकांश सदस्यों से उनके विचार नहीं जुड़ते थे। मेरे मद्रास आ जाने के बाद से डेढ़ से दो महीनों में सभी बौद्धों में एकजुटता आयी। इन लोगों ने मिलकर रायपेट में एक छोटा सा घर लेकर उस घर का नामकरण बौद्धआश्रम रखा ऑर मुझे यही परी स्थापित कर दिया। उस समय से प्रति रविवार को यहाँ बौद्ध धर्म पर प्रवचन या व्याख्यानों का आयोजन किया जाने लगा। विशेषतः मैं स्वंय किसी एक पालि के सूत्र को पढ़कर आधी अधूरी अंग्रेजी में बताया करता। मेरे बतायी बात पर सिंगारावेलू तमिल में प्रवचन देता था। प्रो.पी.लक्ष्मी नरसू के व्याख्यान भी कभी कभी होते थे और बीच–बीच में बाहर से भी वक्ताओं को आमंत्रित किया जाता था।

किसी भी बौद्ध धर्म उपदेशक को सर्वार्थ से आनंद हो इस प्रकार संस्था का काम चल रहा था। प्रत्येक रविवार को बहुतांश हिंदू और ईसाई लोग हमारे प्रवचन और व्याख्यान सुनने आने लगे। संस्था के प्रति मद्रास के कई कर्मठ ब्राह्मणों की सहानुभूति मिलने लगी। हालांकि मेरे लक्ष्यद में यह कृत्य नहीं थे। मुझे बारंबार अरण्यवास की ओर मेरा मन प्रवृत्त करता रहा। सिवाय इसके मद्रास के भोजन से मेरी प्रकृति में कुछ अधिक बिगड़ चुकी थी। इसके साथ ही बौद्धआश्रम में जमीन पर सोते रहने के कारण संधिवात का विकार भी बढ़ गया। इसी बीच संस्था के सदस्यों ने मेरे लिए एक खाट लेने की बात कही थी लेकिन वह प्रत्यक्ष पूरी नहीं हो पायी। मजीन में सीलन आ जानेपर भी में उसपर बैठक की सतरंजी बिछाकर सोता रहा। इस स्थिति में मेरा मन मद्रास में नहीं रम सका। इसमें भी सिंगारावेलू का स्वभाव मूलतः चमत्कृत करने वाला है। यदि एक बार चिढ़ गया तो कुछ भी बोल जाता था। एक दिन जब ऐसे ही हमारा संभाषण जारी था उसमें भिक्षुओं पर नाराज होते हुए बोल पड़ा कि "ये भिक्षु लोग इजिप्त की ममी की तरह निरूपयोगी है"। मुझे एक कैदी की तरह बंदी बनाए रखने के कारण मैंने भी उसे बहुत कुछ कहा। इस विवाद के बावजूद हमारी मित्रता बनी रही। लेकिन मैंने मद्रास छोड़कर जाने का निश्चय कर लिया। सिंगारावेलू के विरोध द्वारा

अब मद्रास से किसी ओर जगह जाने के लिए किसी तरह कि सहायता मिलनी संभव नहीं लग रही थी।

तब कोई दूसरा उपाय खोजना तो था ही। उस समय मद्रास में कुछ बर्मी विद्यार्थी रहते थे। वे मुझसे एक दो बार भेंट कर चुके थे। उनका कहना था कि मद्रास में अकेले भिक्षु बनकर रहना ठीक नहीं है बर्मा में बहुत से विहार है वहाँ जाने से मेरे अध्ययन में भी सहायता हो सकेगी। इन विद्यार्थियों को सुनने के बाद लगा कि वे मुझे कलकत्ता जाने के लिए कोई सहायता नहीं कारेंगे यह स्पष्ट को गया। लेकिन यह विश्वास था कि बर्मा जाने के लिए कुछ सहायता जरूर मिलेगी तभी मैंने पंडित आयोथीदास के पुत्र को भेजकर पूछताछ की। उसने और उन विद्यार्थियों ने पैसे इट्टा कर पानी के जहाज का किराया वहन करने वचन दिया और मैंने तत्काल बर्मा जाने की तैयारी की। मद्रास में मेरा समय किसी तड़ीपार कैदी के जैसा बीता था लेकिन उसमें जो थोड़ा बहुत सुख मुझे मिला था उसका मुख्य कारण था प्रो.पी. लक्ष्मी नरसू का सान्निध्य। प्रति शुक्रवार को प्रो. नरसू शाम पाँच बजे बौद्धआश्रम में आ जाते थे। मेरे पढ़ने के लिए वे कई पुस्तकें साथ लाते थे। तुलनात्मक अध्ययन कैसे किया जाता है इस प्रविधि को प्रथमतः मैंने उनसे सीखा। उनके कॉलेज की लाइब्रेरी से ऋग्वेद आदि पुस्तकों को मुझे पढ़ने के लिए उपलब्ध करायी। उनके द्वारा पढ़ी गयी पुस्तकों उनके संवाद माध्यम से मुझे बहुत लाभ हुआ। इन सब बातों के अतिरिक्त प्रो. नरसू का बर्ताव उल्लिखित करने जैसा है।

उन्हें किसी भी प्रकार के व्यसनों ने स्पर्श तक नहीं किया है। वे खुले मन के गृहस्थ हैं। जिस किसी के विचार और कर्म में उन्हें अंतर दिखाई देता है ऐसे लोगों को वे दूर रखते है। मद्रास के सुधारकों में उनकी गणना एक महत्वपूर्ण नेता के रूप में होती है। ऐसे मुनष्य के लिए किसी के भी मन में आदर भाव पैदा होना स्वाभाविक है। अक्टूबर 1903 की 12 तारीख को मैं बर्मा के लिए निकला। बंदरगाह पर विदाई देने के लिए पंडित आयोथीदास और अन्य सहयोगी भी आए। पंडित आयोथीदास ने मद्रास के एक सज्जन गृहस्थ से मेरा परिचय करवाया जो इस जहाज से बर्मा जा रहे थे। पंडित आयोथीदास ने उन सज्जन को मेरा ख्याल रखने की आज्ञा के साथ मुझे बिदाई दी। इस प्रकार 'निवेदन' आत्मकथा के प्रकरण बौद्ध विद्वान एवं लेखक आचार्य धर्मानंद कोसंबी की मराठी में लिखी गयी आत्मकथा 'निवेदन' में मद्रास के बौद्ध आश्रम में रहने के दौरान प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान प्रो.पी.लक्ष्मी नरसू, पंडित आयोथीदास और अन्यं के साथ गहरा संबंध आया है। आचार्य धर्मानंद कोसंबी की इस आत्मकथा में अपने समय के बौद्ध जगत का सूक्ष्म अनुभव भी अभिव्यक्त हुआ है। सिंहल (सीलोन) से अनागरिक धर्मपाल के पिता, कुशीनारा से भिक्षु महावीर, पंजाबी भिक्षु धर्मदास, मद्रास से पंडित आयोथीदास और उनके पुत्र तथा श्रीसिंगारावेलू आदि से आचार्य धर्मानंद कोसंबी का संवाद आया है। आधुनिक बौद्ध साहित्य एवं बौद्ध विद्वानों के वैचारिक संबंधों में आचार्य धर्मानंद कोसंबी की यह यात्रा अत्यंत महत्व का स्थान रखती है।

संदर्भ

1 कोसंबी, धर्मानंद. (1924), निवेदन, मनोरंजन ग्रंथप्रसारक मंडळी, मुंबई, पृ.सं. 04

Copyright © 2018, Sandeep Sapkale. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.